क्यों असफल हो रही है मोदी की विदेश नीति?

June 27, 2020
अभय कुमार

2 min read



Share this...

कोरोना संकट के दौरान अगर आप ने अख़बारों को ध्यान से पढ़ा होगा तो एक 'पैटर्न' आप ने ज़रूर नोटिस किया होगा। बहुत सारे लेख ऐसे प्रकाशित किए गये जिनमें इस बात का दावा किया गया कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी विश्व जगत पर एक बड़े 'लीडर' बन कर उभर आये हैं। एक लेख में उनकी तुलना 32वें अमेरिकी राष्ट्रपति और दूसरे विश्व युद्ध में अहम भूमिका निभाने वाले फ्रैंकलिन रूज़वेल्ट से की गई। मगर विश्व का नेता बनना तो दूर की बात, मोदी जी की नेतृत्व वाली सरकार अपने संबंध पड़ोसी देशों से भी मधुर बनाए रखने में नाकाम साबित हो रही है। आखिर क्यों उनकी विदेश नीति असफल हो रही है?

नि:संदेह विदेश नीति में प्रचार-प्रसार और 'इमेज मेकिंग' का रोल होता है। पहले की भी सरकारों ने अपनी कारकरदगी का खूब बखान करवाया। इन सब के पीछे मकसद यह होता है कि अंतरराष्ट्रीय जगत को अपनी तरफ आकर्षित किया जाये। इसी संबंध में अन्तराष्ट्रीय राजनीति के विद्वान जोसेफ नाय (Joseph Nye) ने

‘सॉफ्ट पॉवर’ (Soft Power) की महत्ता पर जोर दिया है और कहा है कि जिस तरह माता पिता बच्चों को उनकी परवरिश के दौरान मूल्यों को उनके अन्दर बैठा देते हैं, उसी तरह राजनेता ‘संस्कृति’, विचारधारा’ और ‘संस्था’ की मदद से अपने माफिक ‘एजेंडा’ और ‘डिबेट’ को दिशा देते हैं।

मगर मोदी की बड़ी भूल यह थी कि उनको यह लगने लगा कि सिर्फ प्रचार और प्रसार से काम बन सकता है। याद कीजिए चुनाव ख़त्म होते ही मोदी जी कैसे विदेश दौरे पर निकल जाते थे और उनका वहां बड़ा-बड़ा ‘शो’ स्टेडियम में आयोजित किया जाता था और उनके समर्थक ‘मोदी-मोदी’ का नारा लगते थे। फिर मीडिया की मदद से इसे प्रसारित किया जाता। अगले दिन के अख़बारात उनकी तारीफ में क़सीदा पढ़ा करते और कहते कि कि मोदी जी ने भारत की पहचान देश और दुनिया में दिलाई है। गोया मोदी जी से पहले भारत को कोई जानता ही न था!

दुर्भाग्य है कि मीडिया ने कभी यह सवाल नहीं किया कि जनता के पैसे को पानी की तरह बहा कर मोदी जी ने क्या ठोस हासिल किया है? आरएसएस और अन्य हिंदुत्ववादी शक्तियों की मदद से भीड़ जमा कर, मोदी जी ने तो बड़े लीडर बनने का दावा ठोक दिया, मगर इन सब से भारत को क्या हासिल हुआ? इस पर भी तो सवाल नहीं उठाया गया कि जो काम विदेश मंत्री सुषमा स्वराज को करना चाहिए था उसे मोदी जी खुद करने के लिए क्यों आगे आ जाते थे? आखिर क्यों विदेश मंत्री सुषमा स्वराज के ज़्यादातर दिन गुमनामी में गुजरे? क्या यह सच नहीं है कि स्वराज ख़बरों में तभी आ पाती थीं जब विदेश में फंसे हिन्दुस्तानियों को बचाने के लिए कोई ‘रेस्क्यू ऑपरेशन’ शुरू होता?

संक्षेप में कहें तो मोदी जी ने भारत की विदेश नीति का इस्तेमाल एक हद तक अपनी ‘इमेज मेकिंग’ के लिए किया। अर्थात खुद की पब्लिसिटी पर ज्यादा ऊर्जा खर्च की। ऐसे विदेश मामलों के जानकर जो उनकी हर बातों से सहमति ज़ाहिर नहीं करते थे, उनको दरकिनार किया गया।

मोदी हुकूमत की असफलता की दूसरी बड़ी वजह यह थी कि उसने वर्षों से चली आ रही “स्वतंत्र विदेश नीति” को ताक पर रख दिया। याद रहे कि शीत युद्ध के दौरान भारत ने अपनी विदेश नीति पूंजीवादी और सोशलिस्ट दोनों कैंपों से दूर रखी। भारत किसी भी गुट का हिस्सा बनने से इंकार कर दिया। समय-समय पर भारत ने दोनों गुटों के साथ सहयोग किया और खुद को दोनों की आपसी लड़ाई से बाहर रखा। हालांकि यह सच है कि कई मौकों पर भारत ने स्वतंत्र विदेश नीति का पालन नहीं किया और तात्कालिक हित के लिए कुछ समझौते भी किए। मगर इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता है उन दिनों भारत “गुटनिरपेक्ष आंदोलन” का एक अहम सदस्य बना रहा और दो सुपर पावर के आपसी झगड़े से खुद को दूर रखा।

मगर 1990 के बाद से भारत की विदेश नीति में भारी परिवर्तन आया। रूस के नेतृत्व में ‘सोशलिस्ट ब्लॉक’ के पतन के बाद, विदेश नीति बनाने वालों में ऐसे लोगों का दबदबा बढ़ने लगा जो भारत की स्वतंत्र विदेश नीति और गुटनिरपेक्ष आंदोलन के कट्टर विरोधी थे। उनका मानना था कि भारत को अमेरिका और इजराइल के कैंप में शामिल होना चाहिए।

ीक बात है कि बदलती हुई दुनिया में विदेश नीति भी ठहरी हुई नहीं रह सकती है। मगर ऐसा भी तो बदलाव न होना चाहिए जो देशहित में न हो। यह कहा कि समझ
भारत को अपने सारे अंडे एक ही टोकरी में रख देने की वकालत शुरू हो गई?

हालांकि 1990 की ‘नई विदेश नीति’ कांग्रेस की पीवी नरसिम्हा राव सरकार के दौरान अपनाई गई और भारत अमेरिका और इजराइल के बेहद क़रीब पहुंच गया। बाद में अटल बिहारी वाजपेयी ने राव की नीति को और जोर-व-शोर से बढ़ाया। मगर मोदी सरकार ने वाजपेयी को भी काफी पीछे छोड़ दिया और भारत की विदेश नीति को एक महाशक्ति के शाबाशी हासिल करने के लिए बड़ी तेज़ी से बदल डाला। कई बार तो ऐसा महसूस हुआ कि भारत की विदेश नीति अमरीकी विदेश नीति के अनुसार बदल रही है।

जब आलोचक मोदी सरकार की विदेश नीति पर एतराज ज़ाहिर करते हैं तो उनका यह मकसद हरगिज़ नहीं होता कि भारत किसी देश से अपने रिश्ते काट ले। आलोचक सिर्फ इस बात पर जोर देते हैं कि भारत- एक लोकतंत्र होने के नाते- अपने संबंध सारे देशों से रखें और उसकी विदेश नीति किसी एक देश या महाशक्ति को खुश करने के लिए नहीं बनाई जाए।

आलोचक यह भी चाहते हैं कि भारत दुनिया में शांति के लिए काम करे। अगर कोई देश लोकतान्त्रिक मूल्यों का उल्लंघन करता है और मानवाधिकार पर चोट करता है, तो भारत को चाहिए कि वह उसका विरोध करे। उसे सब के प्रति मित्रता की भावना से काम करना चाहिए और आपसी विवाद को बातचीत से सुलझाया जाना चाहिए। कूटनीतिक रास्ते अंतिम क्षण तक अख्तियार किए जाने चाहिए। हथियारों की जमाखोरी से बचना चाहिए क्योंकि पैसा और साधन ज्यादा से ज्यादा भूख, गरीबी और बीमारी से लड़ने के लिए इस्तेमाल हों।

निश:स्त्रीकरण (Disarmament) और अन्तरराष्ट्रीय सहयोग पर ज़ोर दिया जाना चाहिए। मगर यह भी अहम है कि भारत को पड़ोसी देशों से अच्छे संबंध बनने के लिए उदारता दिखानी चाहिए। “गुजराल डॉक्ट्रिन” – जिसे पूर्व प्रधानमंत्री इंद्र कुमार गुजराल ने सितम्बर 1996 में बनाया था- का सार है कि भारत पड़ोसी देशों के साथ उदारता से पेश आए (acting generously) और वह इसके बदले में उनसे अपेक्षा न पाले (Without expectations of reciprocity)। मगर अफ़सोस इस अहम सिद्धांत पर अमल नहीं किया गया है।

मगर अफ़सोस कि आरएसएस की शिक्षा की वजह से मोदी जी सहयोग से ज्यादा शक्ति में यकीन रखते हैं। मत भूलिए कि आरएसएस लम्बे वक़्त से परमाणु बम बनाने का पक्षधर रहा है। यही नहीं उसकी पूंजीवादी राजनीति किसी से छुपी हुई नहीं है।

जहाँ तक पश्चिम एशिया की बात है- जहां करोड़ों भारतीय काम करते हैं और देश को अरबों डॉलर की कमाई होती है- वहां भी भारत की छवि ख़राब हुई है। इसकी कम से कम दो वजह है। पहला यह है कि भारत की विदेश नीति जरूरत से अधिक ‘प्रो-इजराइल’ बन गई है और इस दौरान भारत फिलिस्तीन के सवाल से दूर चला गया है। याद रहे कि फिलिस्तीन का सवाल कोई धार्मिक नहीं है। दरअसल यह इंसाफ और इंसानियत का सवाल है। जो, यह प्रचार करते नहीं थकते कि

फिलिस्तीन का सवाल मज़हबी है उनके पास इस बात का जवाब नहीं है कि आखिर क्यों बहुत सारे यहूदी फिलिस्तीन के हक में आवाज़ बुलंद करते हैं? क्या यह सही नहीं है कि बड़ी तादाद में ईसाई और गैर मुस्लिम फिलिस्तीन के लिए लिखते, पढ़ते और आवाज़ बुलंद करते रहे हैं?

मुस्लिम देशों में भी भारत की छवि ख़राब हुई। इसकी दूसरी बड़ी वजह घरेलू साम्प्रदायिकता और मुस्लिम विरोधी राजनीति है। ज़्यादातर अन्तरराष्ट्रीय मामलों के जानकार सरकार घरेलू मामलों पर चुप रहते हैं और यह लिखने की हिम्मत नहीं कर पाते हैं कि कैसे सरकार की नाकिस घरेलू नीति अंतरराष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित करती है। जिस तरह से देश भर में अल्पसंख्यकों के खिलाफ हमले बढ़े हैं, उनसे मुस्लिम देशों में काफी नाराज़गी है। क्या पाकिस्तान इस नाराज़गी को बढ़ा रहा है? अगर बढ़ा भी रहा है तो भारत की कोशिश होनी चाहिए कि इस नाराज़गी के स्रोत को खत्म किया जाए।

मुस्लिम देश ही नहीं बल्कि अमेरिका और पश्चिम मुल्कों ने भी देश में बढ़ रही असहिष्णुता (Intolerance) की घटना पर चिंता ज़ाहिर की है। मोदी सरकार यह भूल जाती है कि घरेलू राजनीति और अन्तरराष्ट्रीय राजनीति के बीच में दीवार नहीं उठाई जा सकती है। आज कल सोशल मीडिया और इन्टरनेट के ज़माने में ख़बरें बड़ी तेज़ी से एक जगह से दूसरी जगह फैल जाती हैं। यह सब जानते हुए भी सरकार ने अभी तक नफ़रत फ़ैलाने वाले तत्वों पर लगाम नहीं लगायी है।

इससे ही जुड़ा हुआ मामला पाकिस्तान से भी है। भारत के खिलाफ पाकिस्तान के अपने मंसूबे हो सकते हैं, मगर क्या जायज़ है कि वोटरों को "कम्युनल" करने के लिए "पाकिस्तान कार्ड" खेला जाए। आप को याद होगा कि बिहार विधानसभा चुनाव (2015) के दौरान भाजपा अध्यक्ष अमित शाह ने बयान दिया था कि अगर नीतीश कुमार की कयादत वाली महागठबंधन की सरकार बन जाएगी तो पाकिस्तान में पटाखे फूटेंगे।

← और कश्मीर के मसले को सांप्रदायिक चश्मे से देखना और धरा 370 को खत्म करना भी मोदी हुकूमत के लिए बड़ी समस्या पैदा कर रहा है। जब जम्मू और कश्मी ल स्टेटस' को रद्द किए जाने का विरोध हुआ, मोदी सरकार ने आलोचकों की एक न सुनी। मगर अब- भले ही राज्य के पोषित तथा कथिक विदेश नीति के जानकर ॉ – धारा 370 हटाये जाने का विवाद बढ़ता जा रहा है। चीन और नेपाल के साथ विवाद के भी तार धारा 370 से जुड़े हुए हैं। पिछले नवम्बर में भारत ने धारा 370 → हटाये जाने के बाद एक नक्शा जारी किया था जिसमें शामिल कुछ भागों पर नेपाल ने अपना दावा ठोका है।

यही नहीं विवादित नागरिकता संसोधन कानून को थोप कर मोदी सरकार ने न सिर्फ सेक्युलर संविधान पर चोट किया है, बल्कि बहुत सारे मुल्कों- खासकर पड़ोसी देशों- को नाराज़ किया है। जहां दुनिया में नागरिकता का आधार "भूभाग" (Territory) को बनाया जा रहा है, वहीं भारत- उलटी दिशा में जाते हुए -इसे धर्म के आधार पर परिभाषित करने की गलती कर रहा है। एक जाने माने राजनीतिक विज्ञानी ने नागरिकता संसोधन कानून को "लोकतंत्र को उलटने की करवाई" (Democratic subversion) कही है।

नागरिकता कानून के विरोध में "भारत का दोस्त" कही जाने वाली बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना ने बयान दिया है । पिछली जनवरी में उन्होंने कहा कि "यह समझ में नहीं आता कि भारत सरकार ने ऐसा क्यों किया। यह ज़रूरी नहीं था"। जहाँ एक तरह भारत और चीन के संबंध गलवान घाटी झड़प के बाद बेहद ख़राब हो गये हैं, वहीं चीन, बांग्लादेश के नज़दीक आ रहा है। भारत के साथ सब से ज्यादा लम्बी सीमा साझा करने वाले बांग्लादेश को चीन ने 97 प्रतिशत टैरिफ़ में छूट देने का प्रस्ताव पेश किया है।

दुर्भाग्य देखिये कि पड़ोसी देशों के साथ उदारता दिखाने और उन्हें साथ ले कर चलने में पहल करने के बजाए मोदी सरकार और उसका भोंपू मीडिया उग्र राष्ट्रवाद का दंभ भर रहे हैं। यही नहीं व्यक्ति पूजा, स्वतंत्र विदेश नीति से दूरी और सांप्रदायिक राजनीति मोदी की विदेश नीति को असफल बनने में बड़ा रोल अदा कर रहे हैं।